'बूढ़ी काकी' के सौ साल

बी आकाश राव
पी-एच.डी. शोध छात्र
हिंदी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक

शोध सारांश :
प्रेमचंद विरचित 'बूढ़ी काकी' के प्रकाशन को सौ वर्ष हो चुके हैं। अपनी विषय-वस्तु और कथ्य की प्रासंगिकता के कारण यह कहानी आज भी जीवंत है। आज साहित्य में जिस गंभीर वृद्ध विमर्श की चर्चा की जाती है उसे बहुत पहले ही प्रेमचंद ने अपने साहित्य में दर्ज कर दिया था। बूढ़ी काकी' का पात्र अपनी विडंबना और उपेक्षा के कारण दयनीय जान पड़ता है। कहानी की पहली ही पंक्ति 'बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है' एक तय निष्कर्ष के साथ कथा को लेकर आगे बढ़ती है। वृद्धावस्था की विसंगति और त्रासदी इस कहानी की मूल संवेदना है। विभिन्न आलोचकों ने इस कहानी पर अलग-अलग ढंग से गौर किया है। ग्रामीण परिवेश में चित्रित वृद्धा की असहाय स्थिति हमें कई बिंदुओं को सोचने पर विवश करती है। मनुष्य की शारीरिक अवस्था, अस्मिता का संघर्ष, नायकत्व के मानदंड, वृद्ध और बालमन की मैत्री सुलभता, कहानी की सार्थकता और पाठकवर्ग पर प्रभाव आदि जैसे कई बिंदु अपने समय-सापेक्ष विवेचना की मांग करते हैं।

बीज शब्द :
पाठ-पुनर्पाठ, ईश्वर भीरुता, त्रासद, सूक्तिपरक, विडंबना, वृद्धावस्था, पुनरागमन, पितृसत्तात्मक समाज, हृदय-परिवर्तन, शतवार्षिक

हिंदी साहित्य में किसी रचना के सौ वर्ष पूरे होना साहित्य के साथ-साथ उसके पाठकवर्ग की गतिशीलता और सजगता का प्रतीक है। एक शताब्दी में बीते 100 वर्षों के दौरान आए परिवर्तन से साहित्य और समाज किस कदर प्रभावित हुआ है इसका प्रमाण हमें मौजूदा वक्त की रचनाओं में देखने को मिलता है। ऐसे में सौ वर्ष पहले लिखी गई कहानी के अतीत और वर्तमान पर गौर करना जरूरी हो जाता है। लेखन मानव हृदय के अकुलाहट की सात्विक प्रतिक्रिया है। अतः किसी भी प्रकार का लेखन उक्त विषय की समस्त समस्याओं की प्रतिरोधी चेतना होती है। कहानी के पाठ-पुनर्पाठ की प्रक्रिया से गुजरते हुए हमें लेखक की रचना प्रक्रिया में चल रहे उन मनोभावों को भी पकड़ने की कोशिश करनी चाहिए जिनसे कोई रचना प्रसूत होती है क्योंकि कोई भी रचना पढ़ने के बाद पाठक वैसा नहीं रह जाता जैसा वह रचना पढ़ने से पहले होता है।

प्रेमचंद एक युग निर्माता साहित्यकार हैं। उनकी कहानियां समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। वह अपने स्तर पर साधारण, चर्चित और बहुचर्चित हर प्रकार के वैविध्य से परिपूर्ण है। वस्तुतः यही कारण है कि प्रेमचंद की कहानियां अपने कथ्य और शिल्प के आधार पर अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालखंडों में अपना सार्थक हस्तक्षेप करती है। 'बूढ़ी काकी' का प्रथम प्रकाशन इसी शीर्षक से उर्दू की मासिक पत्रिका 'कहकशाँ' के जुलाई

वर्ष 1920-21 का समय अंग्रेजों की पराधीनता का समय था। देश में तमाम तरह के सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन चल रहे थे । फरवरी 1921 में प्रेमचंद ने गांधी जी से प्रभावित होकर अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी । अतः ऐसे समय में जब एक लेखक अपने जीवन की उधेड़बुन में उलझा हो 'बूढ़ी काकी' जैसी संवेदनशील कहानी का लेखन उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है । इस वक्त तक प्रेमचंद अपने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से कोरे यथार्थवाद की तरफ अग्रसर नहीं हुए थे जिस कारण वे 'बूढ़ी काकी' जैसी त्रासद कहानी के अंत में बुद्धिराम की पत्नी रूपा का हृदय परिवर्तन करा देते हैं । यद्यपि वह परिवर्तन ईश्वर भीरुता के कारण हुआ हो, परंतु वृद्ध जीवन की विसंगति हमें अंत तक दिखाई देती है ।

प्रेमचंद अपने साहित्य में जिस आदर्श को लेकर चलते हैं उसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उनकी भाषा की है। अमूमन प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में जीवन जगत से जुड़े संदर्भों पर किसी न किसी प्रकार के सूक्तिपरक वाक्य हमें देखने को मिल जाते हैं । मसलन 'गहरे पानी में बैठने से मोती ही मिलता है- परीक्षा', 'क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?- पंच परमेश्वर', अथवा 'मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चांद है जो एक दिन दिखाई देता है और घटते-घटते लुप्त हो जाता है- 'नमक का दारोगा' ऐसे वाक्य उनकी रचनाओं में बहुतेरे मौजूद है जो बीच-बीच में कथा के मर्म को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं । लेकिन ऐसे वाक्य अधिकांश रूप में प्रेमचंद की रचनाओं के मध्य या अंत में देखे जाते हैं । 'बूढ़ी काकी' कहानी का आरंभ "बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है ।"[1] जैसे सूक्तिपरक वाक्य से होता है । अतः इस एक वाक्य को ही कहानी का सार मान लें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी; 'बूढ़ी काकी' जैसी कहानी जो आज भी स्कूल की प्रारंभिक कक्षाओं से लेकर महाविद्यालय तक के पाठ्यक्रमों में देखी जा सकती है, उसकी पहली ही पंक्ति का इतना गंभीर व वजनदार होना साहित्यशास्त्र में नए प्रतिमान स्थापित करता है। लेकिन किसी रचना के साथ ऐसी शुरुआत करने पर लेखक के सामने आगे की कथा के साथ पाठक को उसी तन्मयता के साथ बांधे रखना एक बड़ी चुनौती होती है । प्रेमचंद की इसी कला पर डॉ रामविलास शर्मा लिखते हैं "भारतीय कथा-साहित्य की जातीय परंपरा से प्रेमचंद की कहानियों का बहुत घनिष्ठ संबंध है कहानी फुर्सत की चीज है, काम-धाम से छुट्टी पाकर सुनने की चीज, और जल्दबाजी से काम बिगड़ जाता है । प्रेमचंद के कहानी कहने में वह फुरसत का भाव मिलता है । वह कहानी सुनाते हैं, अक्सर लच्छेदार जबान में, वाक्यों को स्वाभाविक गति से फैलने की आजादी देकर, अंग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियाँ और पत्ते कतरकर नहीं, फूलों और पत्तियों को हवा में बढ़ने और लहराने की आज़ादी देकर । जिंदगी के अनुभवों पर टीका- टिप्पणी भी साथ में चला करती है; व्यंग्य, अनूठी उपमाएँ और हास्य बीच-बीच में पाठक को गुदगुदाते रहते हैं ।"[2] यहां 'पुनरागमन' विशेष पद है जो बुढ़ापा और बचपन के बीच समन्वय पैदा करता है । यद्यपि यह कथन वृद्धों के प्रति बच्चों जैसे स्नेह की आवश्यकता पर जोर देता है लेकिन जिन हरकतों के लिए हम बच्चों को नादान और मासूम कहकर माफ कर देते हैं वृद्धों को उन्हीं बातों पर डांटा या कोसा जाता है । यह भारतीय समाज की एक स्वनिर्मित विडंबना है जहां परिवार के बच्चे घर के बुजुर्गों से सबसे अधिक स्नेह पाते हैं, वहीं बुजुर्गों की स्थिति घर के वयस्कों के बीच उपेक्षित सी हो जाती है ।

प्रेमचंद की कहानियों के साथ-साथ उनके पात्रों की सृजनशीलता और उसमें नायकत्व के दर्शन भी अद्भुत है । प्रेमचंद के पात्र समाज के हर तबके से आते हैं उनमें किसान, मजदूर, शिक्षक, व्यापारी, पंडित, पुलिस, भिखारी आदि हर प्रकार के किरदार हैं । लेकिन अपनी पृष्ठभूमि के साथ उन

किरदारों की उपस्थिति उन्हें एक करिश्माई रूप प्रदान करती है जहां नायक-नायिका के सारे रूप-गुण के प्रचलित मानक फीके पड़ जाते हैं । फलस्वरूप कई बार पाठकों को केंद्रीय पात्र की तुलना में सहायक पात्रों में अधिक नायकत्व के दर्शन होते हैं, जैसे- 'सद्गति का दुखी चमार' या 'मंत्र का बूढा भगत'। जो पीड़ित-शोषित होकर भी नायक की भूमिका निभा जाते हैं अथवा 'दो बैलों की कथा के बैल हीरा- मोती' जो नायकत्व में जूरी काछी से भी आगे निकल जाते हैं । 'बूढ़ी काकी' में भी हमें नायकत्व को लेकर एक उहापोह की स्थिति दिखाई देती है, इस कहानी में बूढ़ी काकी की अवस्था अत्यंत दयनीय है और उनके संवाद भी कम है । बुद्धिराम-रूपा के चरित्र में नैतिकता का अभाव है, बच्ची लाडली के पात्र में प्रेम तो है मगर सांसारिकता नहीं है । अंततः व्यक्तिमन की इच्छाओं, उलझनों, कर्तव्य, दया, प्रेम, क्षमा जैसे गुणों के साथ बूढ़ी काकी इस कहानी की मुख्य पात्र ही नहीं बल्कि नायिका भी ठहरती है । क्योंकि कहानी में बूढ़ी काकी सिर्फ एक पात्र ही नहीं अपितु एक वर्ग तथा एक पूरी पीढ़ी का प्रतीक है । अतः प्रेमचंद उनकी वृद्धावस्था के वर्णन के क्रम में बहुत सधी हुई भाषा से काम लेते हैं "बूढ़ी काकी में जिह्वा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का, रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही । समस्त इंद्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे । पृथ्वी पर पड़ी रहती और घरवाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, भोजन का समय टल जाता या उसका परिमाण पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो वह रोने लगती थीं ।"[3] प्रेमचंद यहां बहुत ही कम स्पेस में बूढ़ी काकी का परिचयात्मक विवरण दे देते हैं । जिसमें उन्होंने भाषाहिक मर्यादा का भरपूर ध्यान रखा है "पृथ्वी जैसे संस्कारित शब्द में जो भारीभरकमपन और सांस्कृतिक बोध है वह 'जमीन' में नहीं । साथ ही यथार्थ का प्रभाव 'पड़ी रहती' से बेहतर व्यक्त नहीं हो सकता । यह मात्र क्रिया और दशा नहीं है। वह भारतीय समाज में वृद्धों की 'अनुपयोगिता' और उनके अवमूल्यन का प्रतीक है ।"[4] प्रेमचंद अपनी रचनाओं में सर्वत्र मौजूद रहते हैं । वे किसी पात्र के साथ प्रत्यक्ष सहानुभूति नहीं दिखाते । इस कहानी में वे अपने लेखन से बूढ़ी काकी, उनके भतीजे बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा तीनों के ही पक्षधर दिखाई पड़ते हैं। "बुद्धिराम स्वभाव से सज्जन थे, किंतु उसी समय तक, जब तक कि उनके कोष पर कोई आंच न आये । रूपा स्वभाव से तीव्र ही सही, पर ईश्वर से डरती थी । अतएव बूढ़ी काकी को उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिराम की भलमनसाहत ।"[5] यहां एक चुटीले और व्यंग्यात्मक लहजे में प्रेमचंद प्रशंसा और आलोचना दोनों एक साथ करते हैं । यह एक लेखक की कोरी इमानदारी है कि वह अपनी रचनाओं में अपने हर पात्र के साथ न्याय करें । लेकिन यह न्याय अंततः किसी एक पक्ष को ही मिल पाता है, दोषी का निर्णय करना पाठक का निजी परिश्रम है । बुद्धिराम का संपत्ति के लिए काकी के सामने भलमनसाहत दिखाना, संपत्ति मिलने पर बुद्धिराम-रूपा का कठोर व्यवहार, काकी का खाने के लिए रोना और गाली देना आदि केवल प्रकरण भर नहीं लगते अपितु इसमें यथार्थ के वीभत्स दृश्य भी शामिल हैं । प्रेमचंद की इस कहानी में ग्रामीण समाज है और उस समाज में वृद्धाश्रम की अवधारणा नहीं थी किंतु वर्तमान परिदृश्य में वृद्धाश्रम 'बूढ़ी काकी' से पिंड छुड़ाने का गंतव्य बन गया है । आज रूपा जैसी बहुएं ईश्वरभीरुता के नाम पर नहीं डरती । संयुक्त परिवार का विघटन अपने चरम पर है तथा 'बूढ़ी काकी' कहानी में जो वृद्धा नेपथ्य में पड़ी रहती है आज घर में उनकी कोई जगह नहीं । बच्चे दादी-नानी की कहानियों के बजाय मोबाइल पर समय बिताना अधिक पसंद करते हैं, ऐसे में जहां प्रेमचंद लाडली के रूप में बूढ़ी काकी का स्नेह कोष सुरक्षित रखते हैं आज वह भी संकट में है ।

कहानी अपने साथ एक बड़े ही गंभीर मुद्दे को लेकर चलती है 'अवस्था का व्यक्तित्व पर हावीपन'। 'बूढ़ी काकी' संबोधन जितना शिष्ट है उतना ही तल्खपूर्ण भी । पूरी कहानी में बूढ़ी काकी के वास्तविक नाम की जानकारी कहीं नहीं मिलती । भारतीय समाज में महिलाओं के लिए आदर्श संबोधन के तौर पर अमुक की मां, पत्नी, बेटी, बहू आदि के रूप में यह प्रथा एक लंबे काल तक चलता रही, फिर नवजागरण और स्त्री अस्मिता के आंदोलनों ने इस क्षेत्र में बड़े बदलाव किए । यद्यपि छोटे बच्चों के संबंध में बाबू, गुड़िया, छोटू जैसे चलताऊ संबोधन भी बने हुए हैं लेकिन एक व्यक्ति जो एक नाम के साथ बड़ा होता है और वह नाम ही उसकी पहचान का आधार बन जाता है । ऐसे में अवस्था का व्यक्तित्व पर हावीपन किसी प्रकार तर्कसंगत नहीं लगता । यह भी कतई सही नहीं कि बुजुर्गों को उनके नाम से बुलाया जाए, परंतु बुढ़ापे को बार-बार निशाना बनाना भी गलत है । इसके साथ ही पितृसत्तात्मक समाज की क्रूर व्यवस्था जहां पति और बेटे के मरने के बाद काकी को अपने भतीजे के संरक्षण में आश्रित रहना पड़ता है, भारतीय समाज में महिलाओं विशेषकर वृद्ध महिलाओं की स्थिति पर सवालिया निशान

खड़े करता है । भूख की समस्या भी उक्त कहानी में वृद्धावस्था की जटिलता को प्रमुखता प्रदान करती है । आर्थिक विपन्नता के बाद जीवन के समीकरण कैसे बिगड़ जाते है 'बूढ़ी काकी' इसकी उम्दा बानगी पेश करती है । यहां भूख के साथ तृष्णा भी शामिल है अगर किसी व्यक्ति ने जीवन में कभी पूड़ी-कचौड़ी न खाई हो तो उसमें उस स्वाद के निमित्त वह प्रतिक्रिया न होगी जो बूढ़ी काकी में दिखाई देती है । इच्छाएं और स्मृति भूख को तीव्रतर करने वाले कारक हैं । बूढ़ी काकी सिर्फ पेट की भूखी नहीं है वह स्नेह की भी भूखी है कदाचित यही कारण है कि छोटी बच्ची लाडली से उनका घनिष्टतम संबंध है । लाडली के पास धन नहीं है, सांसारिक वस्तुएं नहीं है परंतु स्नेह है जो उसे और काकी को एक-दूसरे के करीब लाती है । यहां स्नेह बुढ़ापा और बचपन के पुनरागमन की चक्रीय भूमिका निभाता है ।

कहानी में प्रेमचंद का दृष्टिकोण अति सांसारिक सा लगता है । बूढ़ी काकी के साथ हो रहे शोषणपूर्ण व्यवहार को कटु से कटु शब्दों में वर्णित कर समाज के नग्न यथार्थ को सामने लाने के लिए यह शैली आवश्यक भी है, परंतु कई बार इस शैली के अपने ही खतरे उठाने पड़ते हैं । बतर्ज प्रदीप सक्सेना "यहाँ आपत्तिजनक यह भी है कि प्रेमचंद रौ में असावधान हो गए हैं । काकी जब रेंगते हुए कड़ाह के पास आ बैठी तब प्रेमचंद कहते हैं – 'यहाँ आने पर उन्हें उतना ही धैर्य हुआ जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने में होता है ।' यह बात कुछ अच्छी नहीं लगी । भले ही धैर्य वास्तव में ऐसा ही हो, तब भी लेखक की ओर से वर्णन के अंग के रूप में यह उपमा उनकी उच्च कलात्मक चेतना में दरार सी डाल देती है । असावधानी यह है कि यह उनकी जगह बुद्धिराम या रूपा ने कहा होता तो स्वाभाविक प्रतीत होता ।"[6] हो सकता है कि प्रेमचंद ने ऐसा वर्णन प्रसंग को जीवंत बनाने के लिए किया हो, लेकिन कई बार सत्य का कठोरतम वर्णन सत्य के वास्तविक रूप से भी अधिक भयावह होता है । कुछ इसी तरह का वर्णन आगे भी मिलता है जब कहानी अपने सबसे त्रासद मोड़ पर आती है जहां बूढ़ी काकी जूठी पत्तलों पर टूट पड़ती है तब प्रेमचंद कहते हैं – "एक ब्राम्हणी दूसरों की झूठी पत्तल टटोले, इससे अधिक शोकमय दृश्य असंभव था ।"[7] यहां तक आते-आते कहानी का आधे से भी अधिक हिस्सा समाप्त हो जाता है एवं इसके पूर्व कहीं पर भी काकी की जाति को लेकर कोई सूचना नहीं मिलती, अगर इसके आगे भी नहीं मिलती तो कहानी के मर्म में कोई फर्क नहीं पड़ता । इसके बचाव में रूपा की धार्मिक प्रवृत्ति का होना एक मजबूत तर्क हो सकता है । चूंकि प्रेमचंद जाति-व्यवस्था के हिमायती नहीं है, इसका प्रमाण उनकी अनेक रचनाओं में मिलता है । यहां 'ब्राह्मणी' शब्द न होने पर भी नि:संदेह काकी के प्रति पाठकीय संवेदना में कोई कमी नहीं आती । प्रसंगवश यह बता देना भी उचित है कि पाठांतर की वजह से कई पुस्तकों में संकलित 'बूढी काकी' कहानी में ब्राह्मणी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता । यहां प्रेमचंद अपने आलोचकों के लिए मैदान खुला छोड़ देते हैं यह भी उनकी रचनाओं की लोकप्रियता का एक आधार है, क्योंकि एक ही लेखक अपनी सभी रचनाओं में हमेशा एक जैसा नहीं हो सकता और यहीं से वाद, विवाद और संवाद की उर्वर जमीन तैयार होती है ।

'बूढ़ी काकी' कहानी के संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक शिवकुमार मिश्र लिखते हैं- "बूढ़ी काकी प्रेमचंद की वह कहानी है जो अत्यधिक लोकप्रिय होते हुए भी चर्चा में कम रही है । दूसरा प्रधान कारण इस कहानी में किसी गाँठ का,

अथवा उस तरह की व्यंजानाओं का न होना है, जैसी 'ईदगाह', 'दो बैलों की कथा', 'कफ़न' आदि में है । इसका संबंध स्वाधीनता-संग्राम से भी नहीं जुड़ता । यह विशुद्ध भारतीय जीवन-व्यवहार की एक मार्मिक कहानी है, जिसमें खाते-पीते, एक सामान्य ग्रामीण घर-परिवार के जीवन-व्यवहार के बीच से प्रेमचन्द ने कहानी की केन्द्रीय संवेदना के रूप में एक ऐसे पहलू को उजागर किया है, जो उस घर-परिवार से आगे, नगर और गावों की परिधि के लाखों घर-परिवारों की मानसिकता को अपनी लपेट में ले लेता है । प्रेमचन्द ने केन्द्रीय संवेदना के रूप में इस कहानी में वृद्धत्व को रेखांकित किया है । इस सामान्य धारणा के विपरीत कि एकल परिवारों की तुलना में बुढ़ापा संयुक्त-परिवारों में अधिक सुरक्षित है, प्रेमचन्द इस समस्या को आज के मनुष्य की लाभ-लोभ प्रेरित मानसिकता से जोड़ते हैं और यह बताना चाहते हैं कि आज के आदमी की लाभ-लोभ प्रेरित मानसिकता और स्वार्थ के चलते किस प्रकार मानवीय-सामजिक नाते-रिश्ते ही नहीं क्षत-विक्षत हुए हैं, पारिवारिक नाते-रिश्ते और रक्त-संबंध तक उसकी लपेट से नहीं बचे हैं । सभ्यता के अनेक छद्मों को नोचते-हटाते हुए आज के आदमी की इस गलीच लाभ-लोभ प्रेरित स्वार्थी और जड़ मनोभूमि को प्रेमचन्द ने इस कहानी में उद्घाटित किया है । बुद्धिराम और रूपा जैसे लोग और बूढी-काकी जैसी निस्सहाय जिंदगियों की त्रासदी, महज एक गाँव या घर-परिवार की एक वास्तविकता ही नहीं, वह आज के आदमी की गिरती हुई मूल्य चेतना की एक ऐसी शिनाख्त है, जो महानगरों, नगरों, कस्बों, गाँवों, कहीं पर भी की जा सकती है।"[8]

'बूढ़ी काकी' जैसी त्रासद कहानी का सुखद अंत भविष्य में निहित सकारात्मक संभावनाओं के द्वार खोलता है। काकी की दुर्गति देख रूपा का हृदय-परिवर्तन हो जाता है वह काकी से क्षमा मांगती है और उन्हें संपूर्ण व्यंजन की थाल सजाकर देती है । काकी खाना देखकर बच्चों की तरह सब कुछ भूल जाती है और उन्हें खाते देख रूपा को स्वर्गीय आनंद की अनुभूति होती है । इस अंतिम वाक्य से रूपा के हृदय-परिवर्तन की सच्चाई साफ जाहिर हो जाती है, कहानी यहीं समाप्त होती है । और यहीं से पाठक की जिज्ञासा शुरू होती है कि अगले दिन क्या हुआ होगा ? क्या बूढ़ी काकी को भरपेट भोजन और मान-सम्मान मिला होगा ? या बुद्धिराम-रूपा फिर उनके साथ विश्वासघात करेंगे ? ऐसे कई प्रश्न प्रेमचंद अपनी कलात्मकता से अलिखित छोड़ जाते हैं । प्रश्न आज भी वही है, क्या सौ साल बाद भी हम 'बूढ़ी काकी' के कथा-परिवेश को बदल पाए हैं ? यह बहस से ज्यादा आत्मचिंतन का विषय है । आज 21वीं सदी में विमर्शों का स्वर साहित्य के केंद्र में है । हिंदी की चर्चित कहानियां जैसे 'चीफ की दावत', 'वापसी', 'पिता' आदि वृद्ध विमर्श की पीड़ा को केंद्र में लाने वाली आरंभिक कहानियां है, लेकिन इनसे काफी पहले 1920-21 में प्रेमचंद 'बूढ़ी काकी' में वृद्धों की समस्या को उठाते हैं । जिसमें उनके जीवन स्तर, आर्थिक सबलता, पारिवारिक मान-सम्मान, घरेलू हिंसा जैसे मूलभूत प्रश्न गंभीरता से उठाए गए हैं यह दूरदर्शिता ही प्रेमचंद को कालजयी रचनाकारों में शुमार करती है ।

आज जब यह कहानी अपने शताब्दी वर्ष के पड़ाव पर है तो समूचा विश्व कोरोना की महामारी से जूझ रहा है । लोग घरों में रहकर भी आपस में दूरी बनाने पर मजबूर हैं ऐसे में जब लोग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बात कर रहे हैं, बूढ़े और बच्चों की विशेष देखभाल की आवश्यकता है । वृद्धावस्था जीवन का पड़ाव ही नहीं अपितु पूर्णता भी है, इसे सहेजने और इससे सीख लेने की जरूरत है । घर-परिवार में किसी वृद्ध का होना बरगद की छांव के समान माना जाता है। वस्तुतः 'बूढ़ी काकी' जैसी शतवार्षिक कहानी की सार्थकता उसके कथानक के दोहराव में नहीं बल्कि उसके निषेध में है।

संदर्भ :

1. प्रेमचंद. (2017) बूढी काकी. *मंजूषा.* अमृतराय.(संपा.) इलाहाबाद : हंस प्रकाशन. पृ.-33
2. शर्मा, डॉ.रामविलास.(2008) *प्रेमचंद और उनका युग.* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ.-111
3. प्रेमचंद. (2017) बूढी काकी. *मंजूषा.* अमृतराय.(संपा.) इलाहाबाद : हंस प्रकाशन. पृ.-33
4. सक्सेना, प्रदीप. (1998) बूढ़ी काकी. *प्रेमचंद की कहानियों का महत्व.* मार्कंडेय, डॉ.सत्यप्रकाश मिश्र. संपा. इलाहाबाद : सुमित प्रकाशन. पृ.-120
5. प्रेमचंद. (2017) बूढी काकी. *मंजूषा.* अमृतराय.(संपा.) इलाहाबाद : हंस प्रकाशन. पृ.-33
6. सक्सेना, प्रदीप. (1998) बूढ़ी काकी. *प्रेमचंद की कहानियों का महत्व.* मार्कंडेय, डॉ.सत्यप्रकाश मिश्र. (संपा.) इलाहाबाद : सुमित प्रकाशन. पृ.-124
7. प्रेमचंद. (2017) बूढी काकी. *मंजूषा.* अमृतराय.(संपा.) इलाहाबाद : हंस प्रकाशन. पृ.-41
8. मिश्र, शिवकुमार.(2002) कहानीकार प्रेमचंद : रचना दृष्टि और रचना शिल्प. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ.-52-53